

## दैनिक भास्कर

Date: 25-12-18

### फूड प्रोसेसिंग के जरिये 20 लाख किसानों को लाभ होगा

#### अब खाद्य तेल में आत्मनिर्भरता हासिल करने पर जोर दिया जाएगा

संजय अग्रवाल, ( सचिव, किसान कल्याण मंत्रालय )



नए साल की उम्मीद की नींव अक्सर बीते वर्ष में ही रख दी जाती है। इसकी बानगी कृषि में हमारा प्रदर्शन है। खाद्यान्न में हम न सिर्फ आत्म निर्भर हैं बल्कि चावल, कपास, मूंगफली, तिल आदि के निर्यात में अग्रणी भी हैं। हमने 2017-18 में 126.8 लाख टन चावल, 3.2 लाख टन गेहूं, 7 लाख टन मक्का, 2.73 लाख टन चाय आदि का निर्यात किया। इससे 33.87 अरब डॉलर की विदेशी मुद्रा मिली। यह देश के कुल निर्यात का 10.5% है। 2022 तक कृषि निर्यात 100 अरब डॉलर तक बढ़ाने का लक्ष्य है।

खाद्यान्न में गेहूं, धान, मक्का में हम पहले ही आत्मनिर्भर हैं। दालों के संबंध में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (दलहन) के अंतर्गत गुणवत्ता पूर्ण बीज उपलब्ध कराने के लिए 150 बीज केन्द्रों की स्थापना की गई। पोषक तत्वों के संतुलित उपयोग, नमी को सहेजने वाली टेक्नोलॉजी अपनाने, नई किस्मों के आबंटन, न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) बढ़ाने से दलहन का उत्पादन बढ़ा है। 2015-16 में दालों का उत्पादन 1.64 करोड़ टन था, जबकि मांग 2.4 करोड़ टन के करीब थी। इसलिए शेष आयात करना पड़ता था परंतु ऊपर बताए उपायों से दालों का 2.52 करोड़ टन होने से हम दालों में भी आत्मनिर्भर हो गए।

हालांकि, खाद्य तेलों की बढ़ती मांग और कम उत्पादन क्षमता के कारण खाद्य तेलों का सालाना 1.40-1.50 करोड़ टन आयात करना पड़ रहा है। 2017-18 में घरेलू खाद्य तेलों का उत्पादन 1.05 करोड़ टन रहा और लगभग 74,996 करोड़ रुपये के 1.53 करोड़ टन खाद्य तेलों का आयात किया गया। तीन वर्षीय कार्यक्रम के तहत तिलहन का उत्पादन 2022 तक 4.60 करोड़ टन करने का लक्ष्य है। इससे करीब 1.6-1.7 करोड़ टन खाद्य तेल मिलेगा।

इसके अलावा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (तिलहन) के अंतर्गत नौ तिलहनी फसलों मूंगफली, सोयाबीन, सरसों, तिल, सूरजमुखी, कुसुम, नाइजर, अरंडी अलसी के साथ-साथ ऑइलपाम, कपास बीज, चावल की भूसी, नारियल इत्यादि को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। किसानों के लिए मुश्किल बनी कीमतों की अस्थिरता को देखकर सरकार ने 500 करोड़ रुपये की मूल्य स्थिरीकरण निधि स्थापित की हैं। कुछ राज्यों में एमएसपी तथा मंडी हस्तक्षेप योजना अमल में लाई जा रही है। यह किसानों को मजबूरन बिक्री के खिलाफ सुरक्षा देती है। जहां तक आने वाले वर्ष में खेती में नई पहल का सवाल है 2019 में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा की दृष्टि से मिलेट्स (मोटा अनाज) को बढ़ावा देने के लिए न्यूट्रिसेरियल पर नया मिशन शुरू किया गया है ताकि शुष्क अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक सहनशील ज्वार, बाजरा, रागी,

कोदो जैसी फसलों की खेती की जा सके। दलहनी की तरह तिलहनी मिलेट्स के लिए गुणवत्ता पूर्ण प्रजनक बीजों के उत्पादन के लिए सीड हब कार्यक्रम चलाया जाएगा।

फसल प्रसंस्करण मंत्रालय एवं कृषि मंत्रालय के सहयोग से 6000 करोड़ रुपए के आबंटन से प्रधानमंत्री किसान सम्पदा योजना की शुरुआत की गई है। एगोप्रोसेसिंग क्लस्टरों के फार्वर्ड एवं बैकवर्ड लिंकेज के जरिये फूड प्रोसेसिंग क्षमताओं का विकास किया जा रहा है। इससे जहां 20 लाख किसानों को लाभ मिलगा वहीं करीब 5.5 लाख लोगों के लिए रोजगार पैदा होगा। कृषि उपज का उचित मूल्य दिलाने हेतु राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक कृषि मंडी (ई-नाम) के तहत मार्च 2018 तक 585 मंडियों का एकीकरण कर लिया गया है। 415 मंडियों को ई-नाम प्लेटफॉर्म से जोड़ने का कार्य नए साल में पूरा हो जाएगा।

दलहनी मिलेट के उत्पादन में हम प्रथम स्थान पर हैं और विश्व में 28% योगदान हमारा है। इसी प्रकार मिलेट में 1.65 करोड़ टन उत्पादन करके हम दुनिया के उत्पादन में 49% योगदान देते हैं। अरंडी एवं तिल में भी भारत नंबर वन है और वैश्विक उत्पादन में क्रमशः 88% और 80% योगदान देता है। चावल, मूंगफली और गन्ने में भारत दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है और वैश्विक उत्पादन में उसका योगदान क्रमशः 22%, 13% और 19% है। अच्छे मानसून व विभिन्न योजनाओं के कारण 2017-18 में फसलों का रिकॉर्ड उत्पादन हुआ है। चावल का उत्पादन 11.29 करोड़ टन, गेहूं 9.97 करोड़ टन, पोषक अनाजों सहित मोटा अनाज 4.70 करोड़ टन, दलहन 2.52 करोड़ टन और कुल खाद्यान्न 28.48 करोड़ टन प्राप्त हुआ है, जो पिछले वर्ष की तुलना में 3.53 % अधिक है। भारत बागवानी फसलों विशेषतः फल एवं सब्जियों में विश्व में दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है और 2017-18 में 30.68 करोड़ टन रिकॉर्ड उत्पादन हुआ है। हम बागवानी फसलों के उत्पादन में आत्मनिर्भर होकर निर्यातक भी हो गए हैं।

---

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 25-12-18

### आस्था और सहिष्णुता का जटिल है सवाल

सभी नागरिकों को सहिष्णुता के कम से कम कुछ शुरुआती चरण पार करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए ताकि वे लोकतांत्रिक मूल्यों को स्वीकार और दूसरों का सम्मान करें।

#### नितिन देसाई

आज क्रिसमस का त्योहार है। यह वर्ष का वह समय है जब धार्मिक मान्यताओं के अच्छे पहलुओं को याद किया जाता है। खेद की बात है कि यह सब भारत में संभव नहीं है। इसलिए क्योंकि देश में इस समय धार्मिक हिंसा की घटनाएं बढ़ रही हैं। ये घटनाएं अक्सर बहुसंख्यक समुदाय के उन्मादियों द्वारा प्रेरित हैं। मैं यह सब इसलिए लिख रहा हूं क्योंकि हाल ही में घटी एक ऐसी ही घटना ने देश में कानून व्यवस्था की बुनियाद के लिए ही चुनौती पैदा कर दी। उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर में 3 दिसंबर, 2018 को गो-संरक्षकों की एक भीड़ ने एक बहादुर पुलिस अधिकारी इंस्पेक्टर सुबोध कुमार

सिंह की हत्या कर दी। देश में संवैधानिक मूल्यों की रक्षा और उन्हें बढ़ावा देने को लेकर प्रतिबद्ध सेवानिवृत्त अफसरशाहों के एक समूह ने इस स्तब्ध करने वाली घटना पर एक पत्र जारी किया। मैं भी इस समूह का सदस्य हूँ और पत्र पर मेरे भी हस्ताक्षर हैं। हमारी साझा चिंता को स्पष्ट करने के लिए मैं पत्र में से एक संक्षिप्त हिस्सा आपके सामने रखना चाहता हूँ:

'देश के सर्वाधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश में शासन के आधारभूत सिद्धांत, संवैधानिक मूल्य और मानवीय सामाजिक आचरण पथभ्रष्ट हो रहे हैं। प्रदेश के मुख्यमंत्री बहुसंख्यक श्रेष्ठता और धर्मांधता के इस एजेंडे में शीर्ष पुजारी की भूमिका में हैं। ऐसा लग रहा है कि यह एजेंडा अब शेष सभी चीजों पर भारी पड़ रहा है।' 'यह बहुसंख्यकों की ताकत दिखाने का जानबूझकर किया गया प्रयास था और इसके जरिये क्षेत्र के मुस्लिम समुदाय के लोगों को यह संदेश दिया गया कि उन्हें भय में जीना होगा, अधीनस्थ दर्जा स्वीकार करना होगा और बहुसंख्यक समुदाय की बात माननी होगी।' पत्र में इंस्पेक्टर सुबोध कुमार सिंह की बहादुरी को सलाम किया गया है और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के इस्तीफे की मांग की गई है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश में अफसरशाही और पुलिस विभाग के प्रमुखों को विधि का शासन सर्वोच्च रखने के उनके संवैधानिक दायित्व की याद दिलाई गई। इलाहाबाद उच्च न्यायालय से अनुरोध किया गया कि वह इस घटना का स्वतः संज्ञान ले। पत्र में यह प्रस्ताव भी रखा गया कि घृणा और हिंसा की राजनीति के खिलाफ नागरिकों के नेतृत्व में राष्ट्रीय अभियान चलाया जाए।

बुलंदशहर की घटना कोई इकलौती घटना नहीं है। बीते पांच वर्ष में गौरक्षकों ने 80 से 100 लोगों की हत्याएं की हैं। इनका संबंध प्रायः सत्ताधारी दल से रहा है। झारखंड में हाल ही में एक अदालत ने ऐसे ही कुछ अपराधियों को आजीवन कारावास की सजा दी। इस गौरक्षक समूह के कथित नेता ने कक्षा 7 में पढ़ाई छोड़ दी थी और वह ट्रक पर हेलपर के रूप में काम करने लगा था। वह डकैती और अवैध कोयला परिवहन में शामिल रहा, कई बार जेल गया और सांप्रदायिक हिंसा में शामिल हो गया। बहुसंख्यक संगठन ऐसे तत्त्वों की तलाश में रहते हैं और अपनी हिंसा में उनका इस्तेमाल करते हैं। गौरक्षक प्रकरण के अलावा हिंसा की ऐसी कई अन्य घटनाएं भी सामने आई हैं।

हमारा देश संवैधानिक लोकतंत्र वाला देश है और हम धार्मिक स्वतंत्रता और अल्पसंख्यक अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हैं। धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा भड़काई जाने वाली इस हिंसा से बढ़कर संविधान की आत्मा को ठेस पहुंचाने वाली हरकत दूसरी नहीं हो सकती। ये तमाम घटनाएं आपराधिक श्रेणी की हैं और इनसे निपटने का काम उन पुलिसकर्मियों और अधिकारियों का है जिन्होंने संविधान को बरकरार रखने की शपथ ली है। वे यदाकदा ही ऐसा कर रहे हैं और बतौर नागरिक यह हमारा कर्तव्य है कि हम आगे आकर उनके खिलाफ बोलें और कार्रवाई की मांग करें।

परंतु हमें इससे परे जाकर घृणा और हिंसा के खिलाफ जन आंदोलन शुरू करना होगा। हमारे देश में आस्था और धर्म बहुत महत्व रखते हैं। शायद ये किसी व्यक्ति की पहचान का सबसे अहम पहलू हैं। समय के साथ इसमें बदलाव आ सकता है लेकिन फिलहाल यही हकीकत है। ऐसे में हमारी चुनौती है संवैधानिक मूल्यों को आगे बढ़ाना जहां किसी को अपनी आस्था त्यागनी न पड़े। यह कैसे होगा? सबसे पहले लोगों को यह समझना होगा कि बतौर नागरिक हम सभी समान हैं, हमारे अधिकार समान हैं। कुछ राजनेताओं की ओर से विरोधियों को पाकिस्तान भेजने जैसे जो वक्तव्य आते हैं वे पूर्णतया असंवैधानिक और अस्वीकार्य हैं। दूसरा, एक कदम आगे बढ़कर कोई यह भी कह सकता है कि हर किसी को अपना नजरिया रखने का हक है। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बरकरार रहनी चाहिए। तीसरा चरण यह है जहां कोई कह सकता है कि अगर आपकी जगह में

होता तो मैं यह कहता और करता। यह अच्छी संवाद प्रक्रिया की शुरुआत का संकेत है। इस विचार के साथ आगे बढ़ने वाले समाज ही व्यावहारिक रूप से अल्पसंख्यक विचारों का समायोजन करते हैं।

चौथी और सबसे कठिन बात वह है जहां व्यक्ति अपनी पहचान से एकदम स्वतंत्र होकर विवादास्पद मुद्दों पर नीतिगत निर्णय लेते हैं। अगर मुझे पता ही नहीं हो कि मैं हिंदू हूं या मुस्लिम तो मैं राम मंदिर पर क्या करूंगा? सैद्धांतिक तौर पर नीतिगत स्थानों पर ऐसे लोग होने चाहिए जो जातीय-धार्मिक पहचान आदि से परे होकर काम करें। हममें से कई लोग चरण तक नहीं पहुंच पाते। परंतु हम आपस में कहीं अधिक सह-संबद्ध हैं। हमारा रोजमर्रा का जीवन कहीं अधिक विविधतापूर्ण है और यह प्रयास किया जा सकता है कि सभी नागरिक कम से कम सहिष्णुता का प्राथमिक चरण तो पार करें। उसके लिए हमें लोकतंत्र के सिद्धांतों को स्वीकार करना होगा और दूसरों का सम्मान करना होगा।

दूसरों को सुनने की प्रतिबद्धता का होना केवल अपनी बात कहने और दूसरों को ज्ञान देने की तुलना में अधिक आवश्यक है। यही वजह है कि हमें ऐसी अंतरधार्मिक घोषणाओं को महत्व देना चाहिए जो सहिष्णुता और तमाम धर्मों की समझ की बात करती हों। ऐसे संदेश तब अधिक ताकतवर होते हैं जब वे ऐसे लोगों से आए जो किसी खास धर्म से ताल्लुक रखते हों, बजाय कि धर्मनिरपेक्ष उदारवादियों के। क्रिसमस के अवसर पर बाइबल से एक उद्धरण लेते हैं जिसमें कहा गया है, 'मैं आप बंधुओं से अपील करता हूं कि उन लोगों पर नजर रखें जो बंटवारा करते हैं और आपको दी गई शिक्षाओं में बाधाएं उत्पन्न करते हैं।' हमारे संवैधानिक गणराज्य के अंगुआओं ने हमें जो कुछ सिखाया है वही हमारे लिए सर्वोपरि है।

राष्ट्रीय  
**सहारा**

Date: 24-12-18

## निगरानी की तैयारी

### संपादकीय

कंप्यूटर और अन्य संचार उपकरणों को निगरानी के विवाद को राजनीतिक बयानबाजी से ज्यादा महत्व नहीं दिया जा सकता। आम लोगों की निजता में दखल नहीं हो, इस सिद्धांत से कोई असहमत नहीं हो सकता। किंतु निजता का अधिकार उस जगह जाकर खत्म हो जाता है जब व्यक्ति पर किसी तरह का कानून तोड़ने का संदेह हो। किसी की गतिविधियां यदि राष्ट्रीय सुरक्षा या अशांति को खतरा पहुंचाने वाला दिखे तो उसकी पूरी छानबीन करनी होगी और उसमें कंप्यूटर और संचार उपकरण आएंगे ही। वर्तमान आदेश में जिन 10 केंद्रीय एजेंसियों को निगरानी करने के लिए अधिकृत किया गया है, वे सब पेशेवर पर कुशल मानी जाती हैं। विपक्ष भले इसकी आलोचना करे, लेकिन सच यही है कि यह आदेश 2009 में पहली बार जारी हुआ और उसे ही इस समय जारी किया गया है। एजेंसियां भी वहीं हैं जो उस समय थीं। इसमें नया कुछ नहीं है। देश में बरसों पहले बना टेलिग्राफ कानून आज भी लागू है, जिसके तहत जहां-जहां राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले आते हैं, कुछ एजेंसियों को निगरानी रखने का अधिकार रहा है। इसके लिए एजेंसियां अधिसूचित होती हैं।

निस्संदेह, यह यूपीए द्वारा बनाया गया नियम ही है, जिसका सेत सन 2000 में बनाया गया सूचना तकनीक कानून है। इसके सेक्शन 69 के तहत यह कहा गया कि राष्ट्रीय सुरक्षा, संप्रभुता और एकता को लेकर किसी चिंताजनक स्थिति में सक्षम एजेंसियां यह जांच कर सकती हैं। किंतु हमारा प्रश्न है कि सरकार ने उसकी समीक्षा की है या नहीं? समीक्षा में उसके दुरु पयोग के मामले आए हैं या नहीं? इन दो प्रश्नों का उत्तर देश को मिलना चाहिए। राष्ट्रीय सुरक्षा और सांप्रदायिक सौहार्द आदि के लिए हम कुछ समय के लिए अपनी निजता में एजेंसियों के हस्तक्षेप के लिए तैयार हैं, पर यह गारंटी होनी चाहिए कि बेवजह किसी को परेशान नहीं किया जाएगा। यह बात ठीक है कि न तो सभी की निगरानी की जाएगी और न कोई भी आकर हमारे कंप्यूटर आदि की जांच करने लगेगा। बावजूद इसके जो आशंकाएं हैं, उनका निवारण होना चाहिए। सरकार विचार करे और इस आदेश में कुछ ऐसे प्रावधान जोड़े, जिससे इसके दुरु पयोग की संभावनाएं खत्म हो। साथ ही हम यह भी चाहेंगे कि विपक्ष को अगर इस आदेश में कुछ कमियां दिखीं हैं तो उनको सामने लाकर संशोधन कराए। मगर इसके बाद में अनावश्यक संदेश न पैदा करें।

*Date: 24-12-18*

## सही राह की ओर

### खुशबू गुप्ता

जिस प्रकार भारत अपने वैदेशिक संबंधों का संचालन कर रहा है, उसे देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्तमान भारतीय विदेश नीति (प्रागमैटिक एप्रोच) व्यावहारिक दृष्टिकोण पर जोर दे रहा है। संबंध चाहे अपने पड़ोसी देशों नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, श्रीलंका के साथ हो या सुदूर के मुल्क। वर्तमान सरकार का दृष्टिकोण अनुमानतः उसी पर आधारित है और यदि हम अंतरराष्ट्रीय राजनीति की बात करें तो विदेश नीति के संदर्भ में राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाकर सफल विदेश नीति का संचालन किया जाता रहा है। यदि हम भारत-श्रीलंका के संबंधों की समीक्षा करें तो हाल ही के वर्षों में चीन की श्रीलंका में बढ़ती सक्रियता ने भारतीय विदेश नीति का रुझान श्रीलंका के संदर्भ में प्रागमैटिक एप्रोच की तरफ बढ़ना दिखता है।

विदित हो कि भारत अपने पड़ोसी देशों के साथ मधुर संबंधों को बनाए रखने पर हमेशा से प्रतिबद्ध रहा है और जब बात श्रीलंका के साथ संबंधों की हो तो इसको बेहतर बनाने के लिए तो न केवल सामरिक, आर्थिक, राजनीतिक बल्कि सांस्कृतिक कूटनीति पर भी बल प्रदान कर रहा है। यदि दोनों देशों के मध्य रिश्तों की समीक्षा करें तो पाते हैं कि समय-समय पर कुछ राजनीतिक और कूटनीतिक कारणों से दोनों देशों के मध्य रिश्तों में खटास भी आई है; चाहे वह भारतीय मछुआरों का मुद्दा हो या तमिल का। इसी संदर्भ में, वर्तमान में भारतीय सरकार “सबका साथ सबका विकास” न केवल देश के भीतर बल्कि नियंतण स्तर पर भी इसी सोच के साथ अपने वैदेशिक संबंधों के संचालन पर प्रतिबद्ध है। दोनों देशों के बीच रिश्तों की प्रगाढ़ता न केवल व्यापार, निवेश, रक्षा क्षेत्र और शिक्षा-संस्कृति के क्षेत्र में है बल्कि उससे आगे बढ़कर रहा है।

इसका उदहारण अभी हाल ही में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के द्वारा भारतीय आवास परियोजना के तहत श्रीलंका में भवनों का आवंटन किया जाना है। विदित हो कि तमिल मुद्दा एक प्रमुख मानवीय चुनौती के रूप में सामने आया है, जिसमें

लगभग 3,00,000 तमिल लोगों को आंतरिक रूप से विस्थापित करके कैंपों में रखा गया था। भारतीय सरकार द्वारा संतुलित कार्यक्रम के तहत तमिल लोगों को सामान्य जीवन प्रदान करने और उनको शीघ्र मदद करने का समर्थन दिया गया। परिणामस्वरूप विकासात्मक सहायता परियोजनाओं के क्रियान्वयन से हुई महत्वपूर्ण प्रगति से संबंध प्रगाढ़ हुए हैं। दोनों देशों के बीच राजनीतिक समझौते हमेशा से लोकतंत्र, अनेकता और मानवाधिकारों के सम्मान के अनुकूल रहा है। दोनों देशों के मध्य सामरिक मुद्दे, आतंकवाद, विकास परियोजनाएं और सबसे महत्वपूर्ण तमिल मसला प्रमुखता से रहा है। भारत और चीन श्रीलंका में अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए प्रयासरत हैं। यही नहीं बुद्धजीवियों द्वारा श्रीलंका में राजनीतिक अस्थिरता का कारण महाशक्तियों से जोड़कर देखा जा रहा है। जहां चीन अपने हितों को साधते हुए हिन्द महासागर तक अपनी प्रभावशाली पहुंच बनाने के लिए प्रयासरत है वहीं भारत का चीन के विस्तारवादी नीति से चिंतित होना स्वाभाविक है। बहरहाल, श्रीलंका के बनते राजनीतिक समीकरण पर दोनों महाशक्तियां अपने पैनी नजर रखे हैं। ये सर्वविदित है महिंद्रा राजपक्षे की सरकार से भारत को मुश्किलें हुई हैं, जैसे राजपक्षे सरकार द्वारा भारत के लिए सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हंबनटोटा बंदरगाह चीन को कई वर्षों की लीज पर दे दिया जाना।

राजपक्षे सरकार का तमिल विरोधी होना भारत के लिए अपने देशवासियों, जो श्रीलंका में रह रहे हैं सदैव प्रमुख मुद्दा रहा है। संबंधों में उतार चढ़ाव के साथ-साथ भारत का श्रीलंका के साथ प्रगाढ़ता बनी रहे, इसके लिए मोदी सरकार द्वारा कई प्रयास भी किए जा रहे हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि श्रीलंका के साथ सांस्कृतिक संबंध बहुत ही विशेष रहा है। इसी संदर्भ में भारतीय उच्चायोग ने 21 जून 2015 को आयकॉनिक समुद्री स्थल गाले फेस ग्रीन में अंतरराष्ट्रीय योग दिवस मनाया। दोनों देशों के राजनेताओं की यात्रा वहां के नागरिकों के लिए नई आशा और उम्मीद को बढ़ाता है। यही नहीं श्रीलंका के प्रधानमंत्री रनिल विक्रमसिंघे की बीते दिनों भारत यात्रा भी भारत के साथ संतुलित संबंध को दर्शाता है। अन्य छोटे देश चीन की विस्तारवादी नीति को रोकने के लिए भारत को शक्तिशाली देश के रूप में देख रहे हैं। परिणामस्वरूप भारत के साथ अपने वैदेशिक संबंधों को भरोसेमंद रिश्ते के रूप में चाहते हैं। दूसरी तरफ श्रीलंका में बनते इस राजनीतिक समीकरण में भारत सदैव चाहेगा कि वहां जो भी सरकार बने उसकी पक्षधर रहे जिससे भारत अपने संबंधों को प्रगाढ़ बनाये रखने में सफल रहे।

---

 **जनसत्ता**

Date: 24-12-18

## ट्रंप का फैसला

संपादकीय





दूसरे देशों में अपने सैनिकों को भेज कर लंबे समय तक अभियान चलाने वाले अमेरिका को अब हकीकत समझ में आने लगी है। इराक, सीरिया, अफगानिस्तान जैसे संकटग्रस्त देशों में अपनी सेना को फंसा देख ट्रंप ने जो कदम उठाने शुरू किए हैं, वे इस बात के पक्के संकेत हैं कि अब अमेरिका बाहरी सैन्य अभियानों से हार मान चुका है और उसे इसमें नुकसान ही ज्यादा हो रहा है। सीरिया से अमेरिकी सैनिकों की वापसी भी इसी वजह से हुई और अब आने वाले वक्त में अफगानिस्तान से भी सात हजार अमेरिकी सैनिकों को वापस बुलाने की तैयारी हो चुकी है। हालांकि सैनिकों की वापसी का फैसला अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के लिए आसान इसलिए नहीं रहा होगा क्योंकि उनके रक्षा मंत्री जेम्स मैटिस इस फैसले के पक्ष में नहीं थे। लेकिन ट्रंप जिद्दी प्रकृति के हैं। उन्होंने रक्षा मंत्री की एक नहीं सुनी। इस टकराव का नतीजा मैटिस के इस्तीफे के रूप में सामने आया। मैटिस ने सार्वजनिक तौर पर कह दिया है कि सैन्य और विदेश मामलों पर ट्रंप के साथ उनकी पटरी नहीं बैठ रही।

सैन्य और विदेश नीति से जुड़े गंभीर मुद्दों पर ट्रंप और मैटिस के बीच गहराते मतभेद अमेरिका की दशा-दिशा को बताने के लिए काफी हैं। इस वक्त विदेश नीति के मोर्चे पर अमेरिका को कई संकटों का सामना करना पड़ रहा है। सीरिया से सैनिकों को बुलाने के पीछे ट्रंप ने तर्क दिया कि वहां अमेरिका का काम पूरा हो चुका, अमेरिकी सैनिक इस्लामिक स्टेट (आइएस) का सफाया करने गए थे। हालांकि अमेरिका इस बात को अच्छी तरह समझता है कि वह आइएस के लड़ाकों को तो मार सकता है, पर आइएस को खत्म नहीं कर सकता। सीरिया से अमेरिकी सैनिकों की वापसी से यह संदेश गया है कि अमेरिका वहां से पिंड छुड़ा कर भागा है। अमेरिका ने अफगानिस्तान से सात हजार सैनिकों की वापसी का फैसला तालिबान के साथ शांति समझौते की कीमत पर किया। आधे अफगानिस्तान पर तालिबान का ही कब्जा है और अमेरिका उसकी इस ताकत को समझता है। इसलिए अमेरिका ने तालिबान पर वार्ता के लिए दबाव बनाया और बदले में आधे अमेरिकी सैनिकोंको हटाने की बात कही। लेकिन तालिबान को रूस समर्थन देता रहा है। लेकिन शिकागो में हुई शांति वार्ता के बाद तालिबान ने अमेरिका को झटका दिया और आगे किसी वार्ता से इंकार कर दिया। ट्रंप के ये दांव गलत भी पड़ सकते हैं।

चीन से लेकर रूस तक से अमेरिका विवादों में उलझा है। अमेरिकी सैनिकों की वापसी से भारत और अफगानिस्तान दोनों पर असर पड़ेगा। अफगानिस्तान ने तो साफ कहा है कि ट्रंप का फैसला उसे गंभीर संकट में डालने वाला है। जैसे ही अमेरिकी फौज की वापसी होगी, अफगानिस्तान के सुरक्षा बलों को तालिबान लड़ाकों के बड़े हमले झेलने पड़ेंगे। ऐसे में अफगान सुरक्षा बलों की ताकत पर असर पड़ेगा और तालिबान ज्यादा मजबूत होकर उभरेगा। वह उन इलाकों पर कब्जे के लिए जंग छेड़ सकता है जो अफगानिस्तान की निर्वाचित सरकार के नियंत्रण वाले हैं। अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में भारत बड़ी भूमिका निभा रहा है। कई बड़ी परियोजनाएं भारत के सहयोग से ही चल रही हैं। ऐसे में अफगानिस्तान में भारत की मुश्किलें बढ़ेंगी। अमेरिका अर्थव्यवस्था सहित कई संकटों से जूझ रहा है। ऐसे में ट्रंप के लिए बेहतर है कि दूसरे देशों में टांग न फंसाएं।

Date: 24-12-18

## समस्या की अनदेखी करते समाधान

**हिमांशु एसोशिएट प्रोफेसर जेएनयू**

छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और राजस्थान के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस की जीत ने कृषि संकट को राजनीतिक बहस के केंद्र में ला दिया है। इस चुनावी जीत के निश्चय ही कई कारक थे, लेकिन खेतिहरों की दुश्वारियां इन सबमें प्रमुख थीं। यह माना जाता है कि सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी कृषि संकट को लेकर उदासीन रही है, बल्कि कुछ हद तक उसने इसे बढ़ाया ही है, लेकिन वास्तव में इस संकट का कोई आसान उपाय दिखता भी नहीं। यहां तक कि जीत हासिल करने वाली कांग्रेस ने भी किसानों का भरोसा जीतने के लिए कर्जमाफी के पुराने फॉर्मूले और न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में बढ़ोतरी जैसे वादों पर भरोसा किया।

ये दोनों नुस्खे पुराने हैं और हर पार्टी द्वारा आजमाए जा चुके हैं। यहां तक कि भाजपा भी उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनावों और अन्य जगहों पर यह दांव खेल चुकी है। मगर क्या सिर्फ कर्जमाफी और एमएसपी में वृद्धि कृषि संकट पर निर्णायक चोट कर सकती है? और क्या केवल इन्हीं के बूते दीर्घकालिक समाधान संभव है? बिल्कुल नहीं। ये न सिर्फ आधे-अधूरे कदम हैं और असल समस्याओं के समाधान नहीं सुझाते, बल्कि हताशा का एक माहौल भी बनाते हैं, जो कृषि के पुनर्जीवन की संभावनाओं के खिलाफ है। इन सबसे संस्थागत बकायेदारों और बड़ी जोत के किसानों को बेजा फायदा मिलता है, और राज्यों एवं केंद्र के वित्तीय संसाधन काफी ज्यादा खर्च हो जाते हैं। कृषि में निवेश में कमी तो आती ही है। मौजूदा सरकार के कार्यकाल में भी कृषि निवेश घट रहा है, और ऐसा उन तमाम राज्यों में भी हो रहा है, जहां की सरकारों ने किसानों को कृषि-कर्ज चुकाने से राहत दी है।

ये कदम हमें उन मूल मुद्दों से भी भटकाते हैं, जो कृषि-संकट के कारण हैं। कर्ज का जाल असल में इस बात का संकेत है कि कृषि आय में भयंकर गिरावट आई है। किसानों की आमदनी इसलिए कम हुई है, क्योंकि बढ़ी लागत के अनुपात में उन्हें फसल के दाम नहीं मिल रहे। ऐसा सिर्फ खाद्यान्न फसलों में नहीं, गैर-खाद्यान्न उपज के साथ भी हो रहा है। पिछले चार वर्षों में कृषि को लेकर व्यापार-शर्तों में जो तब्दीली की गई, उसने हाल के वर्षों में स्थिति बिगाड़ी ही है। हालात इस कदर खराब हो गए हैं कि पिछले पांच महीनों से थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) में कुल खाद्य मुद्रास्फीति नकारात्मक बनी हुई है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि थोक मूल्य सूचकांक के आंकड़ों से कीमतों में गिरावट जैसे सवाल की गंभीरता कम हो जाती है, क्योंकि किसानों के लिए फसल की कीमतें मायने रखती हैं, जो कि थोक मूल्यों से भी कम हैं। बुनियादी सवाल यह है कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में कोई प्रवृत्ति दिखाई न देने के बावजूद आखिर कृषि मूल्य क्यों गिर रहे हैं? तर्क दिए जा रहे हैं कि हद से अधिक उत्पादन के कारण कीमतें गिरती हैं। मगर यह इतना सरल नहीं है, और उस देश के लिए तो बिल्कुल ही निंदनीय है, जहां भुखमरी और कुपोषण अब भी सुर्खियों में रहते हैं। बेशक इसके लिए अनावश्यक आयात, बाजार पर प्रतिबंध और कुछ उत्पादों की हद से अधिक आपूर्ति जैसे कई कारक भी जिम्मेदार हैं, लेकिन यह अर्थव्यवस्था, खासतौर से ग्रामीण आर्थिकी में मांग में आई गंभीर गिरावट का नतीजा भी है।



कृषि उत्पादों की कम कीमतों का एक कड़वा सच वह राजनीतिक अर्थशास्त्र भी है, जो अन्य तमाम उत्पादों की कीमतों के कम बढ़ने पर जोर देती है। और ऐसा खाद्य कीमतों को कम करके हासिल किया जाता है, क्योंकि इसे महंगाई बढ़ने का एक प्रमुख कारण माना जाता है। हालांकि तथ्य यही है कि खाद्य मुद्रास्फीति और मूल महंगाई दर के बीच कोई रिश्ता नहीं होता। यह हाल के महीनों में दिखा भी है, जब दोनों की राह अलग-अलग थी। फिर भी, कम खाद्य महंगाई दर और इस वजह से समग्र मुद्रास्फीति एक ऐसा मसला है, जिस पर रेटिंग एजेंसियों और विदेशी संस्थागत निवेशकों का जोर रहता है, क्योंकि विकासशील मुल्कों में वे अपनी संपत्तियों के वास्तविक मूल्य बनाए रखने की कोशिशों में लगे रहते हैं। इसमें यदि थोड़ा सा भी भटकाव होता है, तो उसका नतीजा रेटिंग के कम होने और राजकोषीय घाटे के डर के रूप में दिखता है।

लेकिन इन सबसे किसानों की कमर जरूर टूटती है, और ऐसा मध्य वर्ग और वित्तीय संस्थानों को सब्सिडी देकर किया जाता है। कृषि में कम कीमत की समस्या एक व्यापक राजनीतिक-आर्थिक ढांचे का हिस्सा है, जो कृषि को एक ऐसे क्षेत्र के रूप में देखता है, जिसका सौदा किया जा सके। यह महंगाई कम करने वाली नीतियों का ही एक हिस्सा है, जिसे 1990 के दशक के बाद से तमाम सरकारें अमल में लाती रही हैं। इस तरह की नीतियों से सरकारी खर्च में भी कमी आती है, जिसके कारण सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में औसत वृद्धि से बेहतर होने के बावजूद देश रोजगार संकट से जूझता है। जाहिर है, ग्रामीण क्षेत्र गहरे संकट में हैं, जहां मांग अपने सबसे निचले स्तर पर है। वास्तविक मजदूरी में भी गिरावट जारी है। बढ़ती लागत और फसलों की कम कीमत के कारण किसानों की आमदनी घटी है। नोटबंदी और जीएसटी ने भी कामगारों को नौकरी देने और मांग पैदा करने की असंगठित क्षेत्र की क्षमता को प्रभावित किया है। नतीजतन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक आभासी गतिरोध पैदा हो गया है। और यह सब तब हुआ है, जब कृषि उत्पादन रिकॉर्ड स्तर पर है और विकास दर बढ़ रही है। इसका अर्थ यही है कि समस्या मूल रूप से आर्थिक विकास के उस मॉडल में है, जिस पर देश चल रहा है। साफ है, जब तक सरकारों को इसका एहसास नहीं होगा कि मौजूदा संकट दोषपूर्ण राजनीतिक-आर्थिक ढांचे का ही नतीजा है, तब तक कृषि संकट के दूर होने की कोई संभावना नहीं है।

---